[Conference- Innovation in Music & Dance :January,2015] ISSN- 2350-0530(O) 2394-3629(P)
DOI :https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v3.i1SE.2015.3433

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

संगीत के प्रचार– प्रसार में संचार माध्यमों की भूमिका

डॉ. किन्शुक श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत (गायन)
सुयंका गुप्ता
शोध छात्रा
वनस्थली विद्यापीठ

नाटक और रंगमंच सम्भवतः मनुष्य जाति का पहला और सदियों तक एकमात्र सशक्त एवं जीवन्त जन–माध्यम रहा है। बदलते हुए समय और समाज के साथ–साथ इसके स्वरूप एवं सरोकार भी लगातार बदलते रहे। प्राचीन काल में शास्त्रीय रंगमंच राज्याश्रित था और लोक–रंगमंच जनाश्रित। मध्यकाल में, मुसलमान–मुगल शासकों ने कलाओं के लगभग सभी रूपों का खूब विकास और विस्तार किया। समय और समाज के परिवर्तन से अभिव्यक्ति माध्यम और साहित्य एवं कलाओं के स्वरूप भी बदलते हैं। आधुनिक काल में विज्ञान ने अभूतपूर्व प्रगति की। नए–नए आविष्कार हुए। प्रिंटिंग प्रेस ने साहित्य को जन–सुलभ बनाने और सूचना–संचार के माध्यम के रूप में अपार सफलता प्राप्त की। अखबारों ने अफवाहों को प्रामाणिक सूचनाओं में बदल दिया और हमारे स्वतंत्रता–संग्राम में जनान्दोलन पैदा करने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्रिंटिंग प्रेस के बाद कैमरा या फिल्म–विज्ञान का बहुत बड़ा चमत्कार सिद्ध हुआ। बीसवीं सदी के पहले दशक के मूक–फिल्मों के दौर में कथा–फिल्मों के निर्माण के साथ ही सिनेमा का नाटक से गहरा रिश्ता जुड़ा। अधिकांश आरंभिक फिल्में अनेक पारसी नाटकों का लगभग ज्यों–का–त्यों फिल्मांकन भर थी। चौथे दशक तक की कई फिल्में या तो नाटकों पर आधारित थीं या पारसी थियेटर की अतिनाटकीयता–अतिरंजना से प्रभावित थीं।

मनोरंजन और लोक–संचार के तीन अन्य इलेक्ट्रॉनिक मीडिया है–रेडियो, ग्रामोफोन और टेलीविजन। इन तीनों ने ही अपने–अपने ढंग से लोकरंजन, शिक्षा और कभी–कभी विचार अभिव्यक्ति के लिये नाटक का उद्भव हुआ। जन माध्यम की दृष्टि से फिल्म, रेडियो, ग्रामोफोन और टेलीविजन जैसे व्यापक एवं सशक्त माध्यमों ने रंगकर्म को काफी पीछे धकेल दिया। आज का नाटक अपनी अस्तित्व–रक्षा के लिए इन इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के नाटकों से टक्कर लेने की कोशिश कर रहा है।

स्वतंत्रता के बाद सातवें दशक से भारतीय फिल्म उद्योग का वह दौर आरंभ होता है, जो फिल्मों के परिमाण, तकनीकी विकास और अपने रंग–वैभव के कारण अत्यंत उत्कृष्ट तथा साहित्यिक, जीवन्तता एवं गुणवत्ता की दृष्टि से अत्यंत निकृष्ट माना जायेगा। सन् 1980 के आसपास जब हमारे देश में दूरदर्शन, वीडियो, कम्प्यूटर, इन्टरनेट जैसे संचार माध्यमों का एक साथ चहुँतरफा आक्रमण हुआ तो तुरंत यह घोषणा कर दी गई कि अब रंगमंच के दिन गिने चुने रह गए हैं लेकिन आश्चर्य है कि महज 20–21 वर्ष में ही सारे संचार माध्यम अपने उत्कर्ष तक पहुंचकर अपनी सार्थकता को लगभग खो चुके है और शिखर से ढलान की तरफ लुढ़कने के लिये विवष है। यहां तक कि सन् 1895 में आविष्कृत फिल्म जैसे सशस्त और प्रभावशाली माध्यम की मृत्यु की घोषणा भी 1995 में कर दी गई, लेकिन रंगमंच जैसा माध्यम पहले था वही आज भी है। और पहले से कही ज्यादा अपनी उपस्थिति को दर्ज करा रहा है।

रंगमंच के साथ न जाने कब से यह खेल होता रहा है और हर बार रंगमंच एक नए रूप में हमारे सामने प्रकट होता रहा है। पिछले चार–पांच हजार वर्षो के रंग इतिहास पर नजर उठाकर देखें तो पता चलता है कि भरत के नाट्यशास्त्र से पूर्व ही भारतीय रंगमंच का इतना विकास और उत्थान हो चुका था कि वह अपने पतन की ओर अग्रसर होने लगा था । ऐसे में भरत जैसे मनीषी रंग–चिन्तक और प्रयोक्ता को उसे संस्कार देने की जरूरत महसूस हुई और उन्होने नाट्य शास्त्र की रचना कर ड़ाली, लगभग 3 हजार ईस्वी के आसपास जब भरत द्वारा प्रतिपादित शास्त्रीय रंगमंच का अवसान होने लगा तो तुरंत देश के अलग–अलग हिस्सों में क्षेत्रीय भाषाओं, बोलियों और उपभाषाओं में लोक रंगमंच का उदय हो गया। 17 वीं –18 वीं शताब्दी में अंग्रेजों के आने के बाद लगा यह लोकरंगमंच भी समाप्त प्राय हो जायेगा तो अंग्रेजी के रंगमंच के समानान्तर पारसी रंगमंच की धारा चल पड़ी और बहुत ही लोकप्रिय हुई। सन् 1930 के आसपास फिल्म में ध्वनि के आविष्कार ने और कैमरे की फोटोग्राफी ने पारसी रंगमंच को गहरा धक्का पहुंचाया और एक बार फिर लगा था कि रंगमंच का नामोनिशान मिट जायेगा, लेकिन ऐसा कुछ भी नही हुआ शहरों, महानगरों, गॉवों, कसबों में– कहने का अर्थ है कि अपने अलग–अलग रूप रंगों में

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

रंगमंच फिर से उसी शिद्दत और ऊर्जा के साथ सक्रिय हो उठा, चाहे वह शौकिया रंगमंच हो, नुक्कड़ रंगमंच हो, लोक रंगमंच हो, प्रयोगशील रंगमंच हो या फिर जो भी, जैसा भी उसका आकार–प्रकार हो।

हम हर बार रंगमंच के पतन को लेकर इतनी चिन्ता क्यों करने लगते हैं जबकि हम अच्छी तरह जानते है कि रंगमंच एक सामूहिक माध्यम है, एक जीवन्त माध्यम है, और जब तक मनुष्य जिन्दा तब तक रंगमंच भी जिन्दा रहेगा। ये सारे के सारे संचार माध्यम मनुष्य ने ही आविष्कृत किये है, और यदि ये मनुष्य के सिर पर चढ़कर ही बोलने लगे तो इससे हास्यापद स्थिति कोई दूसरी नही हो सकती। इतना ही नही ये सारे के सारे संचार माध्यम और दूसरी रचनात्मक कलाएं अपनी मूल प्रकृति में ऐकान्तिक है। अतः वे वेशक एक सीमा तक पहुंचकर समाप्त हो जायेगे, लेकिन रंगमंच जैसा सामूहिक माध्यम समाज से जुड़ा होने के कारण नही मर सकता।

आज के युग में रंगमंच की सार्थकता का विवेचन इस विन्दु से प्रारंभ हो सकता है कि रंगमंच जो प्रयोजन सिद्ध कर सकता है, वह क्या नऐ वैज्ञानिक माध्यमों द्वारा संभव है? रेड़ियो की सीमाओं को देखते हुए प्रारंभ से ही उसके विवेचन को अलग कर दिया जा सकता है। रेड़ियो, मात्र श्रव्य माध्यम है, जबकि रंगमंच श्रव्य और दृष्य दोनों है। नाट्य का जन्म मूलतः दृष्य काव्य के रूप में हुआ था। इस दृष्य काव्य में अपनी प्रत्यक्षता के कारण दर्षकों को प्रभावित करने की, मानवीय राग–विरागों को मूर्त्त रूप देने की जो क्षमता है, वह मात्र श्रव्य माध्यम ही नही है। रेड़ियो नाटक की अपनी विशेषताएं है लेकिन दृष्य एवं श्रव्य दोनों माध्यमों से सम्पन्न रंगमंच का काम वह नही कर सकता। फिल्म और टेलीविजन दोनों ही दृष्य और श्रव्य है, और इनको सामने रखकर रंगमंच का विचार किया जाना चाहिये।

सिनेमा और दूरदर्शन के बढ़ते प्रभाव को देखते हुये लगता है कि यही वह समय है जब हमें रंगमंच के अस्तित्व और भविष्य के विषय में अंतिम रूप से कुछ फैसला कर लेना चाहिये, क्या इतिहास फिर से अपने को दोहराएगा और ये नयी फिल्में तथा शैतान की आंत की तरह लगातार बढ़ते टी.वी. धारावाहिकों, फिल्माश्रित एवं अति लोकप्रीय कार्यक्रमों की बाढ़ एक बार फिर रंगकर्म को पूरी तरह अपने साथ बहा ले जायेगी? क्या अमरीष पुरी, अनुपम खेर, आषुतोष राणा, सतीष कौशिक, अमोल पालेकर जैसे श्रेष्ठ कलाकार अपने पहले प्यार–रंगमंच की ओर कभी नही लौटेगे? क्या नई पीढ़ी के बेशुमार प्रशिक्षित एवं प्रतिभावान मंचीय कलाकारों का फिल्म और टी.वी. जैसे शक्तिशाली, ग्लेमरस तथा तुरंत नाम और दाम देने में समर्थ इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की ओर पलायन रंगकर्म के भविष्य के लिये किसी आसन्न संकट की पूर्व एवं निश्चित सूचना नही हैं ? रंगमंच का कोई ऐसा स्वरूप भी हो सकता है जिसमें रंगमंच सिनेमा एवं टी.वी. के इस आक्रमण से अपने को बचाए रख सके और ये इलेक्ट्रॉनिक मीडिया उसकी उपलब्धियों का ओद्योगीकरण करके उसका शोषण न कर सके। इसी प्रयत्न से नए रंगमंच का जन्म होगा, यही रंगमंच एक जीवन्त, गंभीर और उत्तेजक/आनन्दमयी अभिव्यक्ति–माध्यम के रूप में हमेशा जीवित रहेगा।

सिनेमा युग में भी रंगनाटक की आवश्यकता और महत्ता के संबंध में संदेह नहीं किया जा सकता। आज रंगमंच की आवश्यता को अस्वीकार करना वैसा ही है। जैसा यह करना कि फोटोग्राफी के युग में कलात्मक चित्रों की कोई आवश्यकता नही है। यह प्रश्न उठ सकता है कि सांस्कृतिक परम्परा की दृष्टि से भी और कलात्मक चेतना की दृष्टि से भी इतना महत्वपूर्ण होते हुए भी आज रंगमंच की स्थिति किसी भी देष में बहुत संतोषजनक क्यों नही है? नगर–नगर में सिनेमा हॉल है, रंग शालाये क्यों नही है? ये प्रश्न आज के व्यापक सांस्कृतिक संकट को सूचित करते है। कुछ लोग कहते है कि सिनेमा ने ही रंगमंच को विकसित नही होने दिया है। सिनेमा ने रंगमंच को इसलिये नही मारा है कि वह इससे अधिक सक्षम है, बल्कि इसलिये कि व्यावसान बनकर वह कुछ विशेष वर्गो के लिये विशेष लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

संचार साधनों में आकाशवाणी भी मनोरंजन का एक सशक्त माध्यम है। इसकी स्थापना भारत में सन् 1927 ई. में हुई, जिसने शास्त्रीय संगीत को विशेष महत्व दिया। इससे संगीत घरानों के सीमित दायरों से निकल कर आकाशवाणी के माध्यम से सर्वसाधारण को सुलभ हो गया। आकाशवाणी पर **Recording** बहुत बाद में शुरू हुई, पहले कार्यक्रम का सीधा प्रसारण होता था। जिससे कलाकार सीधे माइक के सामने अपनी गायकी का प्रदर्शन करते थे और उनके कार्यक्रम को सीधे प्रसाारित किया जाता था। अब तक कलाकार वैज्ञानिक उपकरणों के सम्पर्क में आ चुके थे एवं उनके कला–प्रदर्शन पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव अवश्य पड़ रहा था। जिस कलाकार को खुली आवाज के साथ महफिलों में गाने का अभ्यास था, उसे अपनी आवाज को समेटकर माइक्रोफोन के आगे गाने के लिये विवश होना पड़ा। आकाशवाणी के Chief Producer श्री आर.सी. भट्ट का कथन है–''अगर हम 50 वर्ष पहले तक जाएँ तो उससे पहले Microphone हमारे देश में नही था और उसकी

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

आवश्यकता भी नही थी, उसके दो कारण है कि एक तो लोगों की आवाज उनकी गायन–शैली इस प्रकार की थी कि वह ऊँचे स्वरों में श्रोता तक पहुँच सकते थे। दूसरे इतने बड़े–बड़े Public Organization उस जमाने में नहीं होते थे। आज श्रोता और कलाकार में बहुत बड़ा Diffrence आ गया है। उस Gap को भरने के लिये तकनीकी उपकरणों की आवश्यकता पड़ी है।''

माइक्रोफोन, प्रकाश व्यवस्था आदि ने रंगमंच व्यवस्था को अत्यधिक भव्य बना दिया है तथा बड़े से बड़े समूह में कलाकार को सुनना सहज हो गया है। वाद्यों के लिये तो वैज्ञानिक उपलब्धियाँ वरदान सिद्ध हुई है। तन्त्र वाद्यों के सूक्ष्म कार्य माइक्रोफोन के जरिए इतनी सुन्दरता से अभिव्यक्त होते है तथा रिकॉर्ड किया हुआ शास्त्रीय संगीत इतना परिमार्जित और मधुर हो गया है कि उसने कलाकार की कला में चार–चाँद लगा दिए हैं।

यह विज्ञान का ही चमत्कार कहना चाहिए कि ग्रामोफोन से शुरू रिकॉर्डिंग पद्धति की यात्रा कॉम्पैक्ट डिस्क तक सुचारू से पहुँची। किन्तु वैज्ञानिक अनुसन्धान और प्रयोग की प्रक्रिया यहीं न रूककर गति के साथ एक नए मार्ग पर बढ़ चली, जिसका सुपरिणाम अत्याधुनिक डी.वी.डी. के रूप में सामने आया। बीसवीं शताब्दी के आखिरी दो दशकों में कम्प्यूटर का अभूतपूर्व विकास हुआ। इनका प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है। रंगमंच को कम्प्यूटर से जोड़ने के लिये एक ध्वनि कार्ड को प्रयोग में लाया जाता है। कम्प्यूटर की सहायता से आज रंगमंच में अनेक प्रकार की Background music, Background picture एवं वाद्यों की ध्वनि को आसानी से जोड़ सकते है। जो कि देखने में बहुत ही आकर्षक लगता है।

आज के युग की ही देन है कि कलाकार स्वयं को रंगमंच पर देख सकता है पहले उसे दूसरे की दृष्टि को सम्मुख रखकर स्वयं को परिमार्जित करना पड़ता था। कहने का तात्पर्य है कि आज वैज्ञानिक तकनीक ने कला के क्षेत्र को बहुत अधिक विस्तृत कर दिया है।

संदर्भ –

1. रंगकर्म और मीडिया : जयदेव तनेजा, 2002 तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली–110 002
2. अन्तरंग बहिरंग : देवेन्द्र राज अंकुर, 2004 राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली–110 002
3. पारसी–हिन्दी रंगमंच : डॉ लक्ष्मीनारायण लाल, 1973 राजपाल एण्ड सन्ज, नइ 'दिल्ली–110002
4. नाटक और रंगमंच : डॉ. शिवकुमार माली, डॉ0 सुधाकर गोकाककर नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 79नईदिल्ली–110002
5. आधुनिक नाटक और रंगमंच : डॉ लक्ष्मीनारायण लाल, 1973 साहित्य भवन पब्लिकेशन इलाहाबाद–211003
6. भारतीय संगीत में वैज्ञानिक : अनीता गौतम, 2002 कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स उपकरणों का प्रयोग नई दिल्ली–110002

पत्र–पत्रिकाएं

1. छायानट
2. नटरंग